

तिरिथ कुमार एवं अन्य बनाम दादूराम एवं अन्य
(सिविल अपील क्रमांक 13516 ऑफ 2024)

19 दिसंबर 2024

[सी.टी. रविकुमार, न्यायाधीश तथा और संजय करोल, न्यायाधीश]

विचारणीय विवादक:

क्या हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 को वर्तमान उत्तराधिकार सूची के पक्षकारों पर लागू किया जा सकता है?

हेड नोट :

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956-धारा 2(2) - अधिनियम का अनुप्रयोग -भारत का संविधान अनुच्छेद 366(25), 341, 342 मध्य प्रांत विधि अधिनियम, 1875-धारा 5, 6-उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पक्षकार सवारा जनजाति से संबंधित थे, जो एक अधिसूचित अनुसूचित जनजाति है और इस प्रकार, एचएसए, 1956 उन पर लागू नहीं होता है - न्याय, समानता और अच्छे विवेक के आधार पर एम की पुत्रियों और उनके वंशजों (उत्तरवादीगण) को संपत्ति के रूप में एक हिस्सा प्रदान किया गया। शुद्धता:

अभिनिर्धारित किया गया :

एचएसए, 1956 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अनुसूचित जातियां और जनजातियां इसके दायरे से बाहर होंगी - इस प्रकार, एचएसए, 1956 अनुसूचित जनजातियों पर लागू नहीं होता है - इसलिए, इस प्रकरण में विचारण न्यायालय से त्रुटि हुई और उच्च न्यायालय ने उचित निर्णय लिया - पक्षकारों ने कोई अधिसूचना पेश नहीं की जिससे यह पता चलता है कि सवारा जनजाति गैर-अधिसूचित है - इसके अलावा, 'एम' का निधन 1951 में हो गया, यानी एचएसए, 1956 के अधिनियमन से पहले - मध्य प्रांत विधि अधिनियम, 1875 के प्रावधानों और विशेष रूप से इसकी धारा 6 को लागू करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय में कोई त्रुटि नहीं है, जो अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत न आने वाली संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए न्याय, समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांत के आवेदन की बात करती है। अपील में कोई सार नहीं है, खारिज की जाती है। [कंडिका 4-7, 9]

आदिवासी:

महिला आदिवासियों के उत्तरजीविता के अधिकार के लिए केंद्र सरकार को की गई अनुशंसा, दोहराई गई:

अभिनिर्धारित किया गया :

कमला नेती बनाम एलएओ के प्रकरण में महिला आदिवासियों के लिए उत्तरजीविता के अधिकार को सुरक्षित करने के तरीकों पर विचार करने के लिए केंद्र सरकार को की गई अनुशंसा/सुझाव को दोहराया गया – हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956। [कंडिका 11]

न्यायिक दृष्टान्त का उल्लेख किया गया :

कमला नेती बनाम एलएओ [2022] 18 एससीआर 441: (2023) 3 एससीसी 528–लागू नहीं माना गया। मधु किश्वर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य [1996] अनुपूरक 1 एससीआर 442 (1996) 5 एससीसी 125; एम.वी. एलिजाबेथ एवं अन्य बनाम हरवान इन्वेस्टमेंट्स एंड ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड हनोईकर हाउस, स्वातोंतापेठ, वास्को-डी-गामा, गोवा [1992] 1 एससीआर 1003: (1993) अनुपूरक 2 एससीसी 433; एम.आर. बालाजी बनाम मैसूर राज्य [1963] अनुपूरक 1 एससीआर 439: 1962 एससीसी ऑनलाइन एससी 147; महाराष्ट्र राज्य बनाम मिलिंद [2000 5 एससीआर 65: (2001) 1 एससीसी 4; पंजाब राज्य बनाम दर्विंदर सिंह [2024] 8 एससीआर 1321: 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 1860; अहमदाबाद महिला एक्शन ग्रुप (एडब्ल्यूएजी) बनाम भारत संघ [1997] 2 एससीआर 389: (1997) 3 एससीसी 573; भूरी बनाम मारोती, (2015) एससीसी ऑनलाइन बम 3173; भगवती बनाम चेदुराम, 2019 एससीसी ऑनलाइन छ: 209; बिनी बी. (डॉ.) बनाम जयन पी.आर., 2015 एससीसी ऑनलाइन केर 39489; एम. सिद्धीक (राम जन्मभूमि मंदिर-5 जे.) बनाम सुरेश दास [2019] 18 एससीआर 1: (2020) 1 एससीसी 1; सरस्वती अम्मल बनाम जगदम्बल [1953] 1 एससीआर 939: (1953) 1 एससीसी 362 का उल्लेख है।

अधिनियमों की सूची:

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956; मध्य प्रांत विधि अधिनियम, 1875।

सूचक शब्द की सूची:

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 का अनुप्रयोग; अनुसूचित जनजाति; सवारा जनजाति, अधिसूचित अनुसूचित जनजाति; रीति-रिवाज; जनजातीय समुदाय; अनुसूचित जातियाँ; हिंदू कानून; उत्तराधिकार; हिंदू धर्म; पर्याप्त रूप से हिंदूकृत; विमुक्त; समान पूर्वज; संपत्ति का उत्तराधिकार; न्याय, समता और अच्छे विवेक के सिद्धांत; महिला आदिवासी; उत्तरजीविता का अधिकार।

प्रकरण निम्नलिखित से उत्पन्न :

सिविल अपील क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 13516/2024, छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के एसए संख्या 270/2003 के दिनांक 06.02.2019 के निर्णय एवं आदेश से।

पक्षकार हेतु उपस्थिति:

अपीलकर्ताओं हेतु : सतीश पांडे, महेश कुमार तिवारी, सुश्री निशि प्रभा सिंह, सुश्री जय जैमिनी पांडे, सुश्री आयुषी पांडे, सुश्री ललिता गुप्ता, अभिषेक कुमार सिंह, सुश्री विजय लक्ष्मी, ब्रज किशोर मिश्रा अधिवक्तागण.

उत्तरवादीगण हेतु : राजीव कुमार बंसल, परविंदर, मनीष दास, मुकुल विश्वास, विद्या सागर, अरुण कुमार अरुणाचल, अर्जुन डी सिंह, सुश्री अंकिता शर्मा, अधिवक्तागण.।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

संजय करोल, न्यायमूर्ति के अनुसार

चुनौती

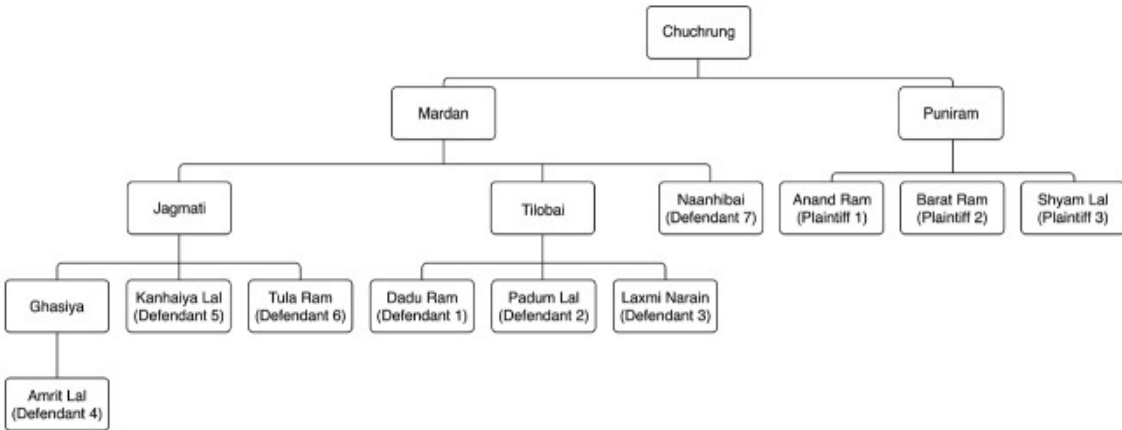
1. यह अपील छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर द्वारा द्वितीय अपील संख्या 270/2003, दिनांक 6 फरवरी 2019 में पारित निर्णय और आदेश की सत्यता पर प्रश्न उठाती है और यह प्रश्न उठाती है कि क्या हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 को वर्तमान उत्तराधिकार के पक्षकारों पर लागू किया जा सकता है? विचारण न्यायालय अर्थात प्रथम अपीलीय न्यायालय ने सिविल अपील संख्या 09 ए/2001 में दिनांक 27 जनवरी, 2003 के निर्णय द्वारा और विचारण न्यायालय ने सिविल वाद संख्या 131 ए/1995 में दिनांक 16 दिसंबर, 2000 के निर्णय द्वारा अपीलकर्ताओं को 'पर्याप्त रूप से हिंदूकृत' पाया, जिन्होंने एक आदिवासी समुदाय के हिस्से के रूप में अपने रीति-रिवाजों को त्याग दिया है और इसलिए वे हिंदू विधि द्वारा शासित हैं, और इस प्रकार प्रतिवादियों का मूल रूप से मर्दन से संबंधित संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं है।

संक्षिप्त तथ्य:--

2. अभिलेखों से प्राप्त संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं: -

2.1 यह विवाद, मूलतः, एक ही परिवार के दो पक्षों के बीच भूमि के स्वामित्व से संबंधित है, जिनके पूर्वज चुचरुंग थे। इस पूर्वज के दो पुत्र थे, मर्दन तथा पुनी राम। पुनी राम के पुत्रों तथा विधिक उत्तराधिकारियों ने विधि को आगे बढ़ाते हुए यह घोषित करने की मांग की कि बागड़ी पाली गाँव में स्थित 13.95 एकड़ भूमि, जिसका खसरा संख्या 26 है, उनकी है और उत्तरवादीगण के विरुद्ध स्थायी निषेधाज्ञा की मांग की है।

2.2 वंशवृक्ष निम्नलिखित है:--



2.3 यह विवाद सिविल न्यायाधीश वर्ग-2, शक्ति, जिला बिलासपुर के न्यायालय के समक्ष आया, जिसमें छह विवाद्यक से निर्धारित किया गया। निर्णय के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्रश्न 2 से 6 तथ्यात्मक प्रश्न थे। निर्णय इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया ::--

2.3.1 अभियोजन साक्षी 1, आनंदराम, जिसका प्रतिनिधित्व अब वर्तमान अपीलकर्ता कर रहे हैं, के बयान तथा प्रतिपरीक्षा तथा बचाव साक्षी 1, दादूराम के कथन पर भरोसा करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि वादी तथा उत्तरवादी दोनों "हिंदू विधि के सिद्धांतों का पालन करते हैं"।

2.3.2 मर्दन की मृत्यु से संबंधित विवाद का समाधान न्यायालय द्वारा यह देखते हुए किया गया कि वास्तव में उनकी मृत्यु हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के लागू होने से पहले हो गई थी। ऐसा निष्कर्ष निकालने के लिए अभियोजन साक्षी 1, उग्रसेन अभियोजन साक्षी 2 और करमहा अभियोजन साक्षी 3 के साक्ष्य पर भरोसा किया गया। आगे यह भी कहा गया कि बचाव साक्षी 1 ने स्वयं अपनी प्रतिपरीक्षा में इस तथ्य को स्वीकार किया था।

2.3.3 वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे के संबंध में, यह अभिनिर्धारित किया गया कि 1951 में मर्दन की मृत्यु के बाद, वादी के पिता पुनी राम ने कब्जा कर लिया। मर्दन के पास जो भी अधिकार थे, वे उनकी पुत्रियों को हस्तांतरित नहीं होते हैं, क्योंकि 1956 के एचएसए से पहले, किसी पुत्री को अपने पिता की मृत्यु के बाद कोई संपत्ति नहीं मिलती थी।

2.3.4 निष्कर्षतः, यह अभिनिर्धारित किया गया कि उत्तरवादीगण का उस संपत्ति पर कोई स्वामित्व का अधिकार नहीं था, जो मूल रूप से मर्दन की थी और पुनी राम के उत्तराधिकारियों का उक्त संपत्ति पर अधिकार था।

2.4 उत्तरवादीगण ने, ऊपर संक्षेपित निष्कर्षों से व्यथित होकर, इस निर्णय के विरुद्ध अपील की। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों से इस आधार पर सहमति व्यक्त की कि दोनों पक्ष वास्तव में हिंदू धर्म का पालन करते थे और मर्दन की मृत्यु हिंदू धर्म अधिनियम, 1956 के लागू होने से पहले हुई थी, और परिणामस्वरूप, मर्दन की पुत्रियों का संबंधित संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं था।

2.5 इससे भी अधिक व्यथित होकर, मामला द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय में ले जाया गया। विधि के मूल प्रश्न निम्नलिखित हैं:--

"1. क्या पक्षकार हिंदू विधि के सिद्धांतों का पालन करते हैं और आज तक करते आ रहे हैं?

2. क्या मर्दन और पुनी राम को उत्तराधिकार में जो संपत्ति प्राप्त हुई थी और उससे जो आय हुई, उससे मर्दन और पुनी राम दोनों ने अन्य संपत्ति खरीदी?

3. क्या मर्दन की मृत्यु वर्ष 1951 में हुई थी और तब से पुनी राम को उत्तराधिकार में संपत्ति प्राप्त हुई है और वर्तमान में वादी उक्त संपत्ति के उपयोग, व्यवसाय और कब्जे में हैं?

4. क्या उत्तरवादीगण ने विधि के अनुसार अपना नाम दर्ज करवाया है और वे उपयोग, व्यवसाय और कब्जे में हैं?

5. सहायता और व्यय

6. क्या मर्दन की मृत्यु हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के लागू होने से पहले हो गई थी, यदि हाँ, तो परिणाम क्या थे?"

2.6 विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों को पलटते हुए उच्च न्यायालय का तर्क यह है कि:

2.6.1 न्यायालय ने एचएसए, 1956 की धारा 2(2) और मधु किश्वर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर गौर किया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि एचएसए, 1956 पक्षकारों पर लागू नहीं होता क्योंकि वे सवारा हैं, जो अनुच्छेद 366(25) के अर्थ में एक अधिसूचित अनुसूचित जनजाति है, और

अभिलेख पर ऐसी कोई अधिसूचना नहीं है जो उन्हें गैर-अधिसूचित करती हो या एचएसए, 1956 को उन पर लागू करने का निर्देश देती है।

2.6.2 इस प्रश्न के संबंध में कि क्या पक्षकार पर्याप्त रूप से हिंदू हो गए हैं, श्रीमती बुतकी बाई एवं अन्य बनाम सुखबती एवं अन्य का संदर्भ दिया गया। वर्तमान तथ्यों के आधार पर, यह अभिनिर्धारित किया गया कि: "वादीगण ने न तो अपने वादपत्र में और न ही अपने साक्ष्य में प्रचलित जनजातीय रीति-रिवाजों का विशिष्ट उल्लेख किया, सिवाय अपनी जाति में विवाह के कुछ समारोहों का उल्लेख करने के। न तो यह कहा गया और न ही साबित किया गया कि उन्होंने अपने मूल के विधि (प्रथागत विधि) को त्याग दिया है और उन्होंने अपने प्रथागत उत्तराधिकार को त्याग दिया है और ऐसा कुछ भी नहीं कहा जिससे उनके उत्तराधिकार और विरासत के मामले में हिंदू विधि की कोई भी धारा शासित होती है..."

2.6.3 उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, न्यायालय ने मध्य प्रांत विधि अधिनियम, 1875 और विशेष रूप से उसकी धारा 5 और 6 का उल्लेख किया है। एम.वी. एलिजाबेथ एवं अन्य बनाम हरवान इन्वेस्टमेंट्स एंड ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड, हनोईकर हाउस, स्वतन्त्रापेठ, वास्को-डी-गामा, गोवा में इस न्यायालय के निर्णय और कुछ अन्य प्राधिकारियों का उल्लेख करते हुए, न्यायालय ने न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए यह निर्णय दिया कि मर्दन के विधि प्रतिनिधि, अर्थात् उनकी पुत्रियाँ और उनके हित-उत्तराधिकारी, वाद की कुल संपत्ति में आधे हिस्से के हकदार होंगे। इन शर्तों के साथ अपील आंशिक रूप से स्वीकार किया गया।

2.7 इसी पृष्ठभूमि में वर्तमान अपील इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत की गई है।

हमारा विचार :

3. वर्तमान अपील के पक्षकार स्वयं को हिंदू होने का दावा करते हैं तथा अतः यह मांग करते हैं कि उत्तराधिकार के प्रकरण में उन पर हिंदू विधि लागू हो। उच्च न्यायालय ने इस तर्क को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि पक्षकार सवारा जनजाति के सदस्य हैं, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के अंतर्गत एक अधिसूचित जनजाति है। अनुच्छेद 341 और 342, जो क्रमशः अनुसूचित जातियों और जनजातियों से संबंधित हैं, के संबंध में संवैधानिक स्थिति को इस न्यायालय की संविधान पीठ ने एम.आर. बालाजी बनाम मैसूर राज्य मामले में निम्नलिखित शब्दों में रेखांकित किया है:--

"20. ...यह महसूस किया गया कि भारतीय समाज में नागरिकों के अन्य वर्ग भी हैं जो अनुसूचित जातियों और जनजातियों के समान ही, या शायद कुछ कम, पिछड़े हैं और यह सोचा गया कि उनके लिए भी कुछ विशेष प्रावधान किए जाने चाहिए। अनुच्छेद 34(1) उन जातियों, मूलवंशों या जनजातियों को निर्दिष्ट करते हुए सार्वजनिक अधिसूचना जारी करने का प्रावधान करता है जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए, राज्य या संघ राज्य क्षेत्र, जैसी भी स्थिति हो, में अनुसूचित जातियाँ माना जाएगा। इसी प्रकार अनुच्छेद 342 अनुसूचित जनजातियों के संबंध में सार्वजनिक अधिसूचना जारी करने का प्रावधान करता है। अनुच्छेद 338(3) के अंतर्गत, यह प्रावधान किया गया है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के संदर्भों का अर्थ ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के संदर्भों के रूप में लगाया जाएगा जिन्हें राष्ट्रपति, अनुच्छेद 340(1) के अंतर्गत नियुक्त आयोग की रिपोर्ट प्राप्त होने पर, आदेश द्वारा निर्दिष्ट करें, और साथ ही आंग्ल-भारतीय समुदाय के संदर्भ भी। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यह प्रावधान यह मानता है कि कुछ पिछड़े वर्ग राष्ट्रपति द्वारा आदेश में कहा गया है कि अनुसूचित जाति और जनजाति में शामिल किया जाए।"

इस संदर्भ में हम महाराष्ट्र राज्य बनाम मिलिंद प्रकरण में की गई टिप्पणियों पर भी गौर कर सकते हैं:--

11. भारत के संविधान के अनुच्छेद 341 और 342 के तहत प्रदत्त शक्तियों के आधार पर, राष्ट्रपति को पहली बार सार्वजनिक अधिसूचना जारी करने का अधिकार है, जिसमें उन जातियों, मूलवंशों या जनजातियों या जातियों, मूलवंशों या जनजातियों के भागों या समूहों को निर्दिष्ट किया जाता है, जिन्हें संविधान के प्रयोजनों के

लिए, किसी राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के संबंध में, जैसा भी मामला हो, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति माना जाएगा। अनुच्छेद 341 और 342 की भाषा और शब्दावली एक समान हैं। अनुच्छेद 341 के संबंध में जो कुछ कहा गया है, वह यथावश्यक परिवर्तनों सहित अनुच्छेद 342 पर भी लागू होता है। उक्त अनुच्छेदों का प्रशंसनीय उद्देश्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को उनके सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन को ध्यान में रखते हुए अतिरिक्त संरक्षण प्रदान करना है, जिससे वे काफी समय से पीड़ित हैं। "अनुसूचित जाति" और "अनुसूचित जनजाति" में "जाति" या "जनजाति" शब्दों का प्रयोग उनके सामान्य अर्थ में नहीं किया गया है, बल्कि अनुच्छेद 366(24) और 366(25) में निहित परिभाषाओं के अर्थ में किया गया है। इस दृष्टि से, कोई जाति अनुसूचित जाति या कोई जनजाति अनुसूचित जनजाति तभी है, जब उन्हें संविधान के प्रयोजनार्थ अनुच्छेद 341 और 342 के अंतर्गत जारी राष्ट्रपति के आदेशों में शामिल किया गया हो। राष्ट्रपति ने अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए संविधान (अनुसूचित जातियाँ) आदेश, 1950 और संविधान (अनुसूचित जनजातियाँ) आदेश, 1950 जारी किए हैं। तत्पश्चात, संघ शासित प्रदेशों और अन्य राज्यों के संबंध में उक्त अनुच्छेदों के अंतर्गत कुछ आदेश जारी किए गए और संसद द्वारा पारित संशोधन अधिनियमों द्वारा जारी आदेशों के संबंध में कुछ संशोधन किए गए हैं। (जोर दिया गया)

हाल ही में, **पंजाब राज्य बनाम दर्विंदर सिंह** प्रकरण में सात न्यायाधीशों की पीठ ने भी इन निर्णयों का संदर्भ दिया। 4. जैसा कि उपरोक्त अंशों से स्पष्ट है, अनुच्छेद 341 और 342 के अंतर्गत बनाई गई सूचियों में संशोधन केवल राष्ट्रपति की अनुमति से ही किया जा सकता है। इसलिए, स्वाभाविक रूप से, किसी जनजाति को अनुसूचित जनजाति के रूप में अधिसूचित करने के लिए, उस आशय की एक अधिसूचना जारी करनी होगी और इसके विपरीत, अर्थात् किसी जनजाति को गैर-अधिसूचित करने के लिए भी। उच्च न्यायालय ने कहा कि पक्षकारों ने ऐसी कोई अधिसूचना प्रस्तुत नहीं की जिससे यह सिद्ध हो कि सवारा जनजाति गैर-अधिसूचित है। इस प्रश्न पर किसी भिन्न दृष्टिकोण की कोई संभावना नहीं है।

5. एचएसए, 1956, शुरू में ही विस्तार से बताता है कि यह विधि किन पर लागू होगा, और यह स्पष्ट रूप से कहता है कि अनुसूचित जातियाँ और जनजातियाँ इसके दायरे से बाहर होंगी। इसकी धारा 2(2) इस प्रकार है:--

"2. अधिनियम का अनुप्रयोग। (1) यह अधिनियम लागू होता है--(2) उप-धारा (1) में निहित किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम में निहित कोई भी बात संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ में किसी अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर तब तक लागू नहीं होगी जब तक कि केंद्र सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, अन्यथा निर्देश न दे।"

6. धारा के शब्द स्पष्ट हैं। एचएसए, 1956, अनुसूचित जनजातियों पर लागू नहीं हो सकता। विधि की यह स्थिति सुस्थापित है। हम इस न्यायालय के कुछ निर्णयों में की गई टिप्पणियों को लाभ के साथ पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं।

6.1 मधु किश्वर बनाम बिहार राज्य प्रकरण में, तत्कालीन न्यायाधीश एम.एम. पुंछी ने, एचएसए की धारा 2(2) के अनुप्रयोग को इस प्रकार नोट किया:--

"4....हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (2) में महत्वपूर्ण रूप से यह प्रावधान है कि अधिनियम में निहित कुछ भी संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के भीतर किसी भी अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर लागू नहीं होगा जब तक कि केंद्र सरकार द्वारा आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना के माध्यम से अन्यथा निर्देशित न किया जाए। धारा 3(2) में आगे प्रावधान है कि अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, पुल्लिंग को दर्शाने वाले शब्दों को महिलाओं को शामिल करने के लिए नहीं लिया जाएगा। (जोर दिया गया) विधायी अभ्यास का सामान्य नियम यह है कि जब तक विषय या संदर्भ में कुछ भी

प्रतिकूल न हो, तब तक विधि में प्रयुक्त पुल्लिंग को दर्शाने वाले शब्दों को महिलाओं को शामिल करने के लिए लिया जाना चाहिए। सामान्य खंड अधिनियम की धारा 13 पर ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए। लेकिन उत्तराधिकार के मामलों में बहुलता के सामान्य नियम को सावधानी के साथ लागू करना होगा। इस प्रकार उपरोक्त प्रावधान को प्रचुर मात्रा में डाला गया प्रतीत होता है। या जनजाति को अधिनियम के प्रभाव से मुक्त कर दिया गया है और बिहार राज्य के मुंडा, उरांव, संथाल आदि जनजातियों को, जो हमारे विचार में शामिल हैं, इससे छूट दी गई है। इस प्रकार, न तो हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, न ही भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, और न ही शरीयत कानून प्रथा-शासित जनजातियों पर लागू होता है। और जैसा कि सर्वविदित है, प्रथा व्यक्ति-दर-व्यक्ति और क्षेत्र-दर-क्षेत्र भिन्न होती है।" अहमदाबाद महिला एक्शन ग्रुप (AWAG) बनाम भारत संघ मामले में तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ ने उपरोक्त स्थिति को दोहराया था।

6.2 हम पाते हैं कि उपरोक्त स्थिति को उच्च न्यायालयों ने भी लगातार अपनाया है। **भूरी बनाम मारोती, भगवती बनाम चेदुराम, और बिनी बी. (डॉ.) बनाम जयन पी.आर.** का संदर्भ लिया जा सकता है। यहाँ हम केवल यह स्पष्ट कर सकते हैं कि उच्च न्यायालयों के निर्णयों के इस संदर्भ को उनके गुण-दोष पर टिप्पणी के रूप में नहीं समझा जाएगा।

7. अतः, विचारण न्यायालय ने इस प्रकरण में स्पष्ट रूप से त्रुटि की, और उच्च न्यायालय ने उचित दृष्टिकोण अपनाया है। यह देखते हुए, उच्च न्यायालय ने न्याय, समता और अच्छे विवेक के आधार पर, स्पष्टतः लेकिन स्पष्ट उल्लेख के बिना, न्यायमूर्ति रामास्वामी द्वारा दिए गए असहमतिपूर्ण निर्णय मधु किश्वर (सुप्रा) से प्रेरणा लेते हुए, मर्दन की पुत्रियों और उनके वंशजों को संपत्ति के रूप में एक हिस्सा देने का आदेश दिया, जिसमें उन्होंने निम्नलिखित निर्णय दिए थे:--

"38. विधि न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों की अभिव्यक्ति है। विधि के शासन को एक ऐसे समाज में सामंजस्यपूर्ण अस्तित्व के लिए एक समान प्रतिमान स्थापित करना चाहिए जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों का प्रयोग अपने सर्वोत्तम लाभ के लिए, सुरक्षात्मक भेदभाव के अधीन, उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए करेगा। एक व्यक्ति का सर्वोत्तम लाभ दूसरे के लिए सबसे बड़ा नुकसान हो सकता है। विधि ऐसी कमियों को दूर करने के लिए आगे आता है और व्यक्तियों के साथ-साथ समूह स्वतंत्रताओं के लिए समान सुरक्षा सुनिश्चित करता है। मनुष्य की स्थिति मूल और प्रक्रियात्मक विधि का एक घटक है जिससे विधिक घटनाएँ जुड़ी होंगी। न्याय, समता और बंधुत्व सामाजिक और आर्थिक समानता के त्रिमूर्ति हैं...

X X X XXXXXXXXXXXXX

56. मेरा मानना है कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के प्रावधान, यद्यपि अपनी शर्तों में, अनुसूचित जनजातियों पर लागू नहीं होंगे, क्योंकि उनमें निहित सामान्य सिद्धांत न्याय, समता, निष्पक्षता, न्याय और सद्विवेक के अनुरूप हैं और उन पर लागू होंगे। तदनुसार, मेरा मानना है कि अनुसूचित जनजाति की महिलाएँ अपने माता-पिता, भाई, पति की संपत्ति में बिना वसीयत के उत्तराधिकार के आधार पर उत्तराधिकारी होंगी और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के सामान्य सिद्धांतों, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा संशोधित और व्याख्या किया गया है, के अनुसार पूर्ण अधिकारों के साथ पुरुष उत्तराधिकारी के साथ समान हिस्से के साथ संपत्ति की उत्तराधिकारी होंगी और आदिवासी ईसाइयों के लिए भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के समान ही..."

8. आइए न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों के अनुप्रयोग पर कुछ निर्णयों का परीक्षा करें।

8.1 एम. सिद्दीक (राम जन्मभूमि मंदिर-5 न्याय) बनाम सुरेश दास प्रकरण में, पाँच विद्वान न्यायाधीशों ने न्याय, समता और सद्विवेक की अवधारणा पर विस्तार से विचार किया। कुछ प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं:

"1003. ... प्रकरण की परिस्थितियों के अनुसार सामान्य नियमों में संशोधन समता द्वारा निर्देशित होता है, न कि सकारात्मक विधि के न्यूनीकरण या निषेध में, बल्कि उसके अतिरिक्त। यह सकारात्मक विधि का पूरक है, लेकिन उसका स्थान नहीं लेता। हालाँकि, दूसरे अर्थ में, जहाँ सकारात्मक विधि लागू विधिक सिद्धांतों के बारे में मौन है, वहाँ समता स्वयं विधि के स्रोत के रूप में एक प्राथमिक भूमिका ग्रहण करती है। समता सकारात्मक विधि में मौजूद अंतरालों को भरने के लिए आगे आती है। इस प्रकार, जहाँ कोई सकारात्मक विधि स्पष्ट नहीं होता है, वहाँ न्यायालय लागू विधि के स्रोत के रूप में समता की ओर रुख करते हैं। इनके अलावा, डेरेट कहते हैं कि एक तीसरा अर्थ भी है जिसमें समता या समतावाद (एक्विटास) का महत्व तब बढ़ जाता है जब स्थापित राजनीतिक सत्ता छीन ली जाती है या संदेह में होती है और कानून के औपचारिक स्रोत संदेह में होते हैं, न्यायिक पद की प्रकृति के लिए पूर्व-स्वामित्व और समतावाद के अनुसार निर्णय की आवश्यकता होती है।

X X XX X XX X XX X XX X XX X XX X XX X X

1019.... न्याय, समता और सद्बिवेक के अनुप्रयोग की गुंजाइश (कम से कम सिद्धांत रूप में) कम हो जाती है जब किसी विधि के तहत स्थापित सैद्धांतिक स्थितियाँ तथ्यात्मक स्थितियों को कवर करती हैं या जहाँ संबंधित व्यक्तिगत विधि की व्यवस्था के अंतर्निहित सिद्धांतों को निश्चित रूप से सुनिश्चित किया जा सकता है। लेकिन फिर भी, ऐसे सिद्धांत को अपनाना न्यायिक शिल्प के साथ अन्याय होगा जो विधि द्वारा शासित विधि के क्षेत्रों में न्याय, समता और सद्बिवेक के अनुप्रयोग को बाहर करता है। क्योंकि विधि अंतरालीय रूप से विकसित होता है, क्योंकि न्यायाधीश न्यायसंगत परिणामों पर पहुँचने के लिए विधि के साथ मिलकर काम करते हैं। जहाँ पक्षों के अधिकार किसी विशेष व्यक्तिगत विधि द्वारा शासित नहीं होते हैं, या जहाँ व्यक्तिगत विधि मौन है या न्यायालय द्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता है, जहाँ किसी संहिता में कोई कमी है, या जहाँ विधि का स्रोत विफल हो जाता है या उसे पूरक करने की आवश्यकता होती है, न्याय, समता और सद्बिवेक का उचित रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

X X XX X XX X XX X XX X XX X XX X XX X X

1022. सामान्य अंतर्निहित सूत्र यह है कि न्याय, सद्बिवेक और समता, न्यायालयों को न्यायसंगत परिणाम सुनिश्चित करने के मुख्य उद्देश्य से, न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत परिस्थितियों के अनुरूप राहत को ढालने में सक्षम बनाने में एक पूरक भूमिका निभाते हैं। जहाँ मौजूदा वैधानिक ढाँचा न्यायालयों के लिए उनके समक्ष उपस्थित विवाद पर निर्णय देने हेतु अपर्याप्त है, या किसी स्थापित न्यायिक सिद्धांत या प्रथा का लाभ नहीं उठाया जा सकता, वहाँ न्यायालय मामले का प्रभावी और निष्पक्ष निराकरण करने के लिए न्याय, समता और सद्बिवेक के सिद्धांतों का वैध रूप से सहारा ले सकते हैं। कोई न्यायालय केवल इसलिए विधिक अधिकारों पर विवाद का निर्णय करने की अपनी ज़िम्मेदारी से नहीं बच सकता है क्योंकि मामले के तथ्य मौजूदा विधि के मूल स्वरूप के अनुप्रयोग के लिए सहज रूप से प्रस्तुत नहीं होते। भारत में न्यायालयों ने पक्षों के बीच न्याय करने के लिए कानूनी विवादों की जमीनी हकीकतों के साथ कानून के मूल स्वरूप की अपूर्णता या अनुपयुक्तता को पूरा करने के लिए लंबे समय से न्याय, सद्बिवेक और समता के सिद्धांतों का लाभ उठाया है। न्याय के एक आवश्यक घटक के रूप में समता, विवादों के न्यायसंगत निर्णय में अंतिम चरण का गठन करती है।" (जोर दिया गया)

8.2 मद्रास राज्य से उत्पन्न एक प्रकरण में, जहाँ प्रथा या विधि द्वारा संपत्ति का हस्तांतरण 'दासी' के संबंध में होता है, एम.सी. महाजन, न्यायाधीश, जो उस समयके न्यायाधीश थे, ने सरस्वती अम्मल बनाम जगदंबल में निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

"21... उत्तराधिकार को नियंत्रित करने वाली किसी प्रथा के अस्तित्व के प्रमाण के अभाव में, मामले का निर्णय न्याय, समता और सद्विवेक के नियमों पर आधारित होना चाहिए क्योंकि निश्चित रूप से हिंदू कानून का कोई स्पष्ट पाठ ऐसे मामले पर लागू नहीं होता है। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि लागू होने वाला न्यायसंगत नियम मामले से निकटता का था, जिसके अनुसार विवाहित और दासी पुत्रियाँ माँ की संपत्ति को समान रूप से साझा करेंगी। उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए इस निर्णय पर कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता। हमें कोई अन्य नियम नहीं सुझाया गया जिससे विपरीत परिणाम प्राप्त हो।"

8.3 एम.वी. एलिजाबेथ (सुप्रा) प्रकरण में न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया: --

"86. इस देश की न्यायिक शक्ति, जो राष्ट्रीय संप्रभुता का एक पहलू है, लोगों में निहित है और संविधान तथा कानूनों के प्रावधानों में अभिव्यक्त होती है तथा इसका प्रयोग करने के लिए सशक्त न्यायालयों द्वारा किया जाता है। उस शक्ति को बीते युग के शाही कानूनों के प्रावधानों तक सीमित रखना बेतुका है। न्यायालय तक पहुँच, जो प्रत्येक नागरिक का एक महत्वपूर्ण अधिकार है, कानून के अनुसार न्याय प्रदान करने के लिए न्यायालय की शक्ति के अस्तित्व को दर्शाता है। जहाँ कानून मौन है और न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता है, वहाँ न्यायालय न्याय, समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांतों के अनुसार शिकायतों का निवारण करने का प्रयास करते हैं।"

9. इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों पर विचार करने और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मरदान का निधन वर्ष 1951 में हुआ था, अर्थात् एचएसए, 1956 के अधिनियमित होने से पूर्व, हमें उच्च न्यायालय द्वारा मध्य प्रांत विधि अधिनियम, 1875 के प्रावधानों और विशेष रूप से उसकी धारा 6 को लागू करने के निर्णय में कोई त्रुटि नहीं दिखती, जो अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत न आने वाली संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत के अनुप्रयोग की परिकल्पना करती है।

10. हम पाते हैं कि **कमला नेती बनाम एलएओ**, के प्रकरण में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने उसके कंडिका 11 में यह निर्णय दिया था कि समता विधि का स्थान नहीं ले सकती है और जब विधि स्पष्ट है, तो उसे लागू किया जाना चाहिए। यह प्रकरण अर्जित भूमि के लिए दिए गए क्षतिपूर्ति के विभाजन से संबंधित है, हालाँकि, वर्तमान विवाद सीधे संपत्ति के उत्तराधिकार से संबंधित है, और इसलिए हमारे सुविचारित दृष्टिकोण से, यह प्रकरण एक अलग आधार पर है।

11. अतः, **कमला नेती (उपर्युक्त)** तथ्यों के आधार पर भिन्न है और वर्तमान प्रकरण पर लागू नहीं होता है। तथापि, महिला आदिवासियों के उत्तरजीविता के अधिकार को सुरक्षित करने के उपायों पर विचार करने के लिए केंद्र सरकार को दी गई अनुशंसा/सुझाव को एतद्वारा दोहराया जाता है। इस संबंध में, इस संबंध में की गई टिप्पणियों को भी नीचे उद्धृत किया गया है:--

"17. विदा लेने से पहले, हम यह देख सकते हैं कि जहाँ तक आदिवासी समुदाय की महिला सदस्य का संबंध है, उत्तरजीविता के अधिकार को अस्वीकार करने का कोई औचित्य नहीं हो सकता है। जब गैर-आदिवासी समुदाय की पुत्री पिता की संपत्ति में बराबर के हिस्से की हकदार है, तो आदिवासी समुदाय की पुत्री को इस तरह के अधिकार से वंचित करने का कोई कारण नहीं है। महिला आदिवासी, बिना वसीयत के उत्तराधिकार में पुरुष आदिवासी के साथ समानता की हकदार है। भारत के संविधान के 70 वर्ष की अवधि के बाद भी आदिवासी से संबंधित पुत्री को समान अधिकार से वंचित करना, जिसके तहत समानता का अधिकार गारंटीकृत है, केंद्र सरकार के लिए इस प्रकरण पर गौर करने और यदि आवश्यक हो, तो हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रावधानों में संशोधन करने का सही समय है, जिसके द्वारा हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर लागू नहीं होता है।

18. अतः, यद्यपि हम वर्तमान अपील को खारिज करते हैं, फिर भी यह निर्देश दिया जाता है कि केंद्र सरकार इस प्रश्न का परीक्षण करे कि क्या यह उचित तथा आवश्यक है कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रावधानों को

अनुसूचित जनजातियों पर लागू करने के संबंध में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के तहत प्रदान की गई छूट को वापस लिया जाए और कोई उपयुक्त संशोधन लाया जाए या नहीं। हमें आशा और विश्वास है कि केंद्र सरकार इस मामले पर विचार करेगी और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत गारंटीकृत समानता के अधिकार को ध्यान में रखते हुए उचित निर्णय लेगी।

12. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, अपील को गुण-दोष रहित मानते हुए खारिज किया जाता है। लंबित आवेदन, यदि कोई हों, का निराकरण किया जाएगा।

प्रकरण का परिणाम: अपील को खारिज किया जाता है।

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।